वराह अवतार एक अनुशिलन

वेद भारतीय वाड्मय और संस्कृति की अनुपम मणिमंजूषा है। वेदों में ऋषियों के द्वारा वैदिक विज्ञान व सृष्टि सदृश तत्वों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। देववाद व अवतारवाद का आरंभ भी सृष्टि विज्ञान को प्रकटित करने का स्त्रोत है। वेदों में मन प्राण व वाक् की त्रयी से इस सृष्टि की उत्पत्ति बतायी गयी है। मनुस्मृति में भी शतपथ ब्राम्हण (6/1/1/9–10) के छठे काण्ड के सदृश ही हजारो सूर्य के समान देदीप्यमान अण्ड से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और उस अण्ड से उत्पन्न होने के कारण ही ब्रह्मा का नाम नारायण हुआ। अर्थात यज्ञवाराह की सहायता से सूर्य मंडल निर्मित हुआ इसे ही वेदों में हिरण्यगर्भ नाम दिया है उसी से सूर्य भी बना है। वेदमंत्र में इसका ही वर्णन है।

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अर्थात् पहले हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होते ही सब भूतों का एकमात्र पति बन गया। वह पृथ्वी और द्युलोक को धारण करता है। उसी प्रजापति को हम लोग हवि से तृप्त करते है। यह हिरण्यगर्भ ही समस्त सृष्टि का कारण है। वेदों, पुराणों व समस्त भारतीय वाड्मय में पृथ्वी की उत्पत्ति पंचभूत प्रक्रियान्तर्गत जल से मानी गयी है। शतपथब्राह्मण के अनुसार इस प्रक्रियान्तर्गत जल के आठ रूप होते हैं – 01) आप् 02) फेन 03) मृत्स्ना 04) सिकता 05) शर्करा 06) अश्मा (पत्थर) 07) अयस् (लोहा) और 08) हिरण्य (सोना)। ये आठों प्रकार के तत्त्व जल समुद्र में यत्र तत्र प्लावित रहते है। जब समुद्र में एक विशेष प्रकार की वायु चलती है, जो चारो दिशाओं में अपना वेग रखती है, उससे ये सब तत्त्व एकत्रित हो जाते हैं। उसी वायु के दबाब से घनीभूत होकर वे तत्व विशीर्ण नहीं होते है। उसी वायु का नाम श्रुतियों में "वराह" रखा गया है। वराह शब्द "वृ" और "अह" दो धातुओं से बना है। वह चारों ओर की वायु सब ओर से पृथ्वी पिण्ड को घेर लेती है और संघात रूप बना देती है, इसलिए उसका नाम वराह रखा गया है। शतपथब्राह्मण (14/12/11) के अनुसार

"इत्यग्र आसीद द्वितीयतो वो इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री।

तामेमूष इति वराह उज्जघान।।"

पौराणिक कथाएँ इसी वैज्ञानिक अंश का रोचक वर्णन करती हैं कि वराह ने जल के भीतर घुसकर पृथ्वी को निकाला और यह पृथ्वी पिण्ड वराह की दंष्ट्रा पर ठहरा हुआ है। इसे ही पुराणों में वराह अवतार कहा गया है।

पुराणों में वराह का वर्णन कहीं वायुरूप में कहीं यज्ञरूप में किया गया है। यज्ञ से ही नये नये तत्व बनते है। वायु ही यज्ञ का प्रथम प्रवर्त्तक है – प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाव्यचरत्।। इसलिए यज्ञरूपी वाराह का वर्णन भी पुराणो में मिलता है। वराह शब्द की व्युत्पत्ति ब्राह्मणग्रन्थों में की गयी है –

"वृणोति च अह्नोति च" ।।

अर्थात जो चारों ओर से घेरे और संघात रूप में प्राप्त करें वही वराह कहलाता है। वराह की वायुरूपता की स्तुति (4/37) विष्णुपुराण में ऋषि इस प्रकार करते हैं –

"द्यावापृथिव्योरतुलप्रभाव यदन्तरं तदवपुषा तवैव।
व्याप्तं जगदव्याप्ति समर्थदीप्ते हिताय विश्वस्य विभोभवत्वम्।।

अर्थात हे सर्वस्वामिन्! पृथ्वी और द्युलोक (सूर्यमंडल) का अन्तर अर्थात् मध्यभाग आपके ही शरीर में व्याप्त हो रहा है। आप संपूर्ण जगत् में अपना प्रकाश व्याप्त करने में समर्थ है। हे प्रभो! आप जगत् का हित करने में प्रवृत्त हो। पुनः वराह का वर्णन विष्णुपुराण (4/29) में इस प्रकार मिलता है –

"उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महावराहस्य महीं विगृह्य।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं रोमान्तरस्था मुनयःस्तुवन्ति।।"

अर्थात् जब महावराहरूपधारी भगवान पृथ्वी को दंष्ट्रा पर रखकर ऊपर उठे और अपने शरीर के रोमों को प्रकम्पित करने लगे, तब रोमकूपों में विराजमान मुनि उनकी स्तुति करने लगे।

इन श्लोकों के आधार पर वराह अवतार का वायु रूप होना ध्वनित होता है क्योंकि पृथ्वी और सूर्यमंडल के मध्यभाग (अंतरिक्ष) में वायु ही व्याप्त रहता है एवं शरीर के रोमो का प्रकम्पन भी वायु का ही कर्म है। भागवत के तृतीय स्कन्ध के तेरहवे अध्याय में वराह के प्रादुर्भाव का विवरण मिलता है कि जब ब्रह्मा ने स्वायम्भुव मनु को उत्पन्न किया और उन्हें प्रजाओ की सृष्टि का आदेश दिया तब मनु ने पृथ्वी के जल के भीतर डूबे रहने के कारण अपने आपको प्रजा की उत्पत्ति में असमर्थ बताया उसी समय ध्यानमग्न ब्रह्मा की नासिका से अंगुष्ठ मात्र का एक वराहरूपधारी पशु निकल पडा और ब्रह्मा के देखते ही देखते वह

हाथी के समान बडा हो गया। आश्चर्यजनक रूप से वह बढता ही चला गया चकित होकर ब्रह्मा मरीचि आदि ऋषियों के साथ विचार करने लगे कि यह अद्भुत पशु मेरी नासिका से कैसे उत्पन्न हुआ और देखते ही देखते कैसे महापर्वताकार हो गया। वह महापर्वताकार वराह जल के भीतर घुस गया और उसने अपनी दंष्ट्रा पर पृथ्वी को उठा लिया। यह दृश्य देखकर ऋषि लोंग वराह की स्तुति करने लगे। इस कथा में भी नासिका विवर से निकलना और शीघ्र ही बढकर हाथी और पर्वत के रूप में जाना वराह की वायुरूपता और यज्ञरूपता प्रस्फुटित हुई है।

न केवल इस पृथ्वी पिण्ड की उत्पत्ति वराह नाम की वायु से होती है, अपितु सभी मंडलों की उत्पत्ति भी वराहरूपी वायु की सहायता से ही होता है। स्वयम्भूमण्डल को एकत्र करनेवाला आदिवराह कहलाता है, परमेष्ठिमण्डल का संगठन कार्य यज्ञवराह करता है, सौरमण्डल को श्वेतवराह एकत्र करता है, चन्द्रमंडल को ब्रह्मवराह और पृथ्वीमण्डल को ''एमूषवराह'' संगठित करता है।

भागवत के तृतीय स्कन्ध के अट्ठाहरवे अध्याय में आदि वराह का वर्णन किया गया है जहाँउसे आदिसूकर भी कहा गया है। हिरण्याक्ष नामक असुर का वध भी वराह के द्वारा किया गया । यज्ञवराहरूप का वर्णन ब्रह्मपुराण के 79 वें अध्याय में मिलता है। वहाँ यज्ञ के उद्धार के लिए ही वराह का अवतार बताया गया है। तृतीय मण्डल के श्वेतवाराह को सौरमंडल का अधिष्ठाता बताया गया है। पृथ्वी के ''एमूषवराह'' का वर्णन विष्णुपुराण में विस्तार से देखने को मिलता है।

।। इतिवराह विज्ञानम्।।